इकाई 3 मोक्ष के उपाय

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 वेदेतर परम्परा में मोक्ष के उपाय

3.2.1 चार्वाक दर्शन में मोक्ष सम्बन्धी विचार

3.2.1 जैनदर्शन में मोक्ष के उपाय

3.2.3 बौद्धधर्म में निर्वाण प्राप्ति के उपाय

3.3 वैदिक परम्परा में मोक्ष के उपाय

3.3.1 वेदोपनिषद् में मोक्ष के उपाय

3.3.2 श्रीमद्भगवतगीता में मोक्ष के उपाय

3.3.3 सांख्ययोग दर्शन में मोक्ष के उपाय

3.3.4 योगदर्शन में कैवल्य प्राप्ति के उपाय

3.3.5 न्यायदर्शन में मोक्ष के उपाय

3.3.6 वैशैषिकदर्शन में मोक्ष के उपाय

3.3.7 मीमांसादर्शन में मोक्ष के उपाय

3.3.8 अद्वैत वेदान्त में मोक्ष के उपाय

3.3.9 विशिष्टाद्वैत वेदान्त में मोक्ष के उपाय

3.4 सारांश

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

3.6 सन्दर्भग्रन्थ

3.7 बोधप्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- हिन्दू जीवनपद्धति के सर्वोच्च आदर्श मोक्ष का अर्थ एवं आवधारणा को जान सकेंगे।
- विभिन्न दार्शनिक परम्पराओं द्वारा विकसित मोक्ष की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- मोक्ष की अवधारणा एवं अर्थ से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर लिख सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

पूर्व की इकाई में आपने पुनर्जन्म की अवधारणा को पढ़ा है। जिस जीव का पुनर्जन्म नहीं होता, उसे मोक्ष की प्राप्ति हुई होती है। इस इकाई में हम आपको मोक्ष के अर्थ को बताने जा रहे हैं। मोक्ष का अर्थ जीवन–मरण और पुनर्जन्म के चक्र से और सभी प्रकार के सांसारिक दुःखों से छुटकारा पाना है। उपनिषद् के ऋषियों ने कठोर इस सत्य का ज्ञान प्राप्त किया कि पुनः पुनः जन्म ग्रहण करना ही सभी प्रकार के दुःखों

का कारण है। जन्म–ग्रहण करने की आवश्यकता का आन्त्यान्तिक अभाव हो जाना ही सभी साधनाओं का लक्ष्य है, यही मोक्ष है।

मोक्ष भारतीय दर्शन का केन्द्र बिन्दु है। मोक्ष शब्द की व्युत्पत्ति 'मोक्ष्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय के योग से होती है। इसका अर्थ होता है छुटकारा, स्वतंत्रता अथवा मुक्ति। जबकि मुक्ति शब्द की व्युत्पत्ति 'मुच्लृ मोचने' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय के योग निष्पन्न होता है। इसका अर्थ भी ''स्वतन्त्र होना'' या 'छुटकारा पाना'' है। शास्त्रों के अनुसार मोक्ष का अर्थ है– 'मुच्यते सर्वैदुःखबन्धनैर्यत्र सः मोक्षः' अर्थात् जिस पद को पाकर जीव तीन प्रकार के दुःखों (आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक) तथा बन्धनों से मुक्त हो जाता है, वह मोक्ष कहलाता है।

भारतीय दर्शन को, दूसरे शब्दों में, ''मोक्षशास्त्र'' भी कहते हैं, क्योंकि यहाँ प्रत्येक दार्शनिक सम्प्रदाय मोक्ष प्राप्त करने का एक विशेष उपाय अथवा रास्ता बतलाता है। इसलिए पाश्चात्य दर्शन के विपरीत, भारतीय दर्शन केवल विचारों का एक विज्ञान ही नहीं, बल्कि जीवन की एक कला भी है। भारत में दर्शन और धर्म एक ही सिक्के के दो पहलुओं के समान घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। एक सिद्धान्त है तो दूसरा उसके अनुसार व्यवहार है। भारतीय दार्शनिकों के अनुसार केवल सत्य की खोज और उसका ज्ञान प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि जीवन में उसे उतारना और उसके अनुरूप जीवन जीना भी आवश्यक है।

3.2 वेदेतर परम्परा में मोक्ष के उपाय

3.2.1 चार्वाक दर्शन में मोक्ष सम्बन्धी विचार

वैदिक परम्परा में मोक्ष परम पुरुषार्थ है। जबकि चार्वाक मुख्य रूप से 'काम' को एकमात्र पुरुषार्थ मानता है – 'काम एवैकः पुरुषार्थः'। चार्वाक के लिए 'अर्थ' काम की प्राप्ति का साधन है। जबकि 'धर्म' और 'मोक्ष' को यहाँ अस्वीकार किया गया है। 'खाओ, पिओ और मौज करो', यही जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। जब तक जीये सुखपूर्वक जीये, धन न हो तो ऋण लेकर घी पीये, क्योंकि शरीर के भस्म हो जाने के बाद उसका आना असम्भव है। चार्वाक का कथन है कि दुःख के भय से सुख का त्याग करना मूर्खता है। माँगने वाले भिक्षुओं के भय से क्या भोजन नहीं पकाया जाय? अतः उपरोक्त उद्धरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चार्वाक काम और अर्थ की ही महत्ता स्वीकार करता है।

वेद की प्रामाणिकता में विश्वास न करने कारण नास्तिक चार्वाक दर्शन वेद सम्बन्धी किसी भी सिद्धान्त जैसे– मोक्ष, स्वर्ग, यज्ञ, धर्म आदि का खण्डन करता है। उसके अनुसार धूर्त ब्राह्मणों ने अपने जीवन–यापन के लिए धर्म–अधर्म, स्वर्ग–नरक, पाप–पुण्य का अन्तर बताकर लोगों को ठगने का प्रयत्न किया है।

चार्वाक के अनुसार यह देह या शरीर ही आत्मा है अतः आत्मा या शरीर का विनाश ही मोक्ष है। ज्ञान से मुक्ति नहीं होती। इसके अनुसार न तो स्वर्ग है, न तो अपवर्ग और न परलोक में रहने वाली आत्मा।

इस प्रकार चार्वाक दर्शन में नैतिकता के स्थान पर स्थूल सुखवाद और आध्यात्मिकता के स्थान पर काम को महत्त्व दिये जाने के कारण मोक्ष और धर्म का पूरी तरह से अभाव है। इसलिए यहाँ परम तत्त्व, मोक्ष के स्वरूप, उसके सिद्धान्त तथा उसे प्राप्त करने के उपाय का भी सर्वथा अभाव है।

3.2.1 जैनदर्शन में मोक्ष के उपाय

जैनदर्शन में जीव का कर्मपुद्गलों से सम्बन्ध विच्छेद की अवस्था कैवल्य या मोक्ष है। दूसरे शब्दों में कहे तो जीव का कर्म पुद्गलों से वियोग या छुटकारा पाना कैवल्य कहलाता है। जैन दर्शन में सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक चरित्र मोक्ष या कैवल्य प्राप्त करने के उपाय अथवा मार्ग माने जाते हैं। इन तीनों का सम्मिलित रूप ही मोक्ष के साधन है। जैन दर्शन में इन्हें त्रिरत्न कहते हैं।

जैन की मान्यतानुसार कर्म बन्धन का कारण है, कर्म का कारण अविद्या है। जीव अविद्या के कारण अपने वास्तविक स्वरूप (अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य और अनन्त सुख) को भूलकर कषायों से चिपका रहता है। यहाँ मोक्ष की प्राप्ति हेतु अज्ञान का नष्ट होना आवश्यक माना गया है। अज्ञान के नष्ट होने के लिये जैन तीर्थंकरों एवं उनके उपदेशों में श्रद्धा का होना आवश्यक है। साथ की उच्च श्रेणी का आचरण और जीवन–यापन भी मोक्ष के लिए आवश्यक है। इस प्रकार जैन दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के उपाय के लिए मनुष्य के आचरण में त्रिरत्नों का होना आवश्यक है।

सम्यक् दर्शन : जैन दर्शन आस्था पर बल देता है यहाँ दर्शन का अर्थ श्रद्धा या विश्वास या आस्था है। मोक्ष के उपाय का प्रथम सोपान सम्यक् श्रद्धा है। अपने अज्ञान के प्रति घृणा और सम्यक् ज्ञान के प्रति श्रद्धा को सम्यक् दर्शन कहा जाता है। यहाँ तर्क, वितर्क का ध्यान रखना आवश्यक है कि कहीं श्रद्धा, अन्धविश्वास में परिणत न हो जाय।

सम्यक् ज्ञान : जैन धर्म एवं दर्शन के सिद्धांतों का ज्ञान सम्यक् ज्ञान है। इसमें जीव और अजीव के स्वरूप और उनके भेद बन्धन के कारण एवं बन्धन के निवारण के लिए आवश्यक साधनों की जानकारी हो जाती है।

सम्यक् चरित्र : सम्यक् ज्ञान को कर्म में परिवर्तित करना सम्यक् चरित्र है। अशुभ कर्मों का त्याग और शुभ कर्मों का आचरण ही सम्यक् चरित्र है। यह जैन साधना का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। क्योंकि मनुष्य सम्यक् कर्म से ही कर्म मुक्त होकर जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इसके अन्तर्गत पंचमहाव्रत, पंचसमिति, तीन गुप्ति, दस धर्म एवं बारह अनुप्रेक्षाओं का समावेश किया गया है।

पंच महाव्रत : अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पांचों जैन धर्म में पंच महाव्रत कहलाते हैं। जैन दर्शन में इन व्रतों के दो रूप है– ''महाव्रत'' और ''अणुव्रत''। महाव्रत संन्यासियों के लिये है और अणुव्रत गृहस्थों के लिये बताये गये है। जैन दर्शन में संन्यासियों से यह अपेक्षा की गई है कि वे इन व्रतों का पालन कठोरतापूर्वक करेंगे। जबकि गृहस्थों को इन व्रतों के पालन में छूट दी गई है।

अहिंसा : जैन साधन पद्धति में अहिंसा का विशेष स्थान है। इसका तात्पर्य है कि मन, वचन और कर्म से हिंसा न करना। यहाँ अहिंसा के दो रूप बतलाये गये हैं– निषेधात्मक पक्ष और भावात्मक पक्ष। अहिंसा के निषेधात्मक पक्ष में मन, वचन और कर्म द्वारा हिंसा का परित्याग करना आता है। अहिंसा का भावात्मक पक्ष है कि सभी प्राणियों को अपने समान समझना तथा उनके कष्टों के निवारण के लिए सतत् प्रयत्नशील रहना।

सत्य : जैन दर्शन में सत्य वह कथन है जिससे प्राणी मात्र का कल्याण हो। यदि सत्य वचन से किसी प्राणी को कष्ट पहुँचता हो तो वहाँ मौन रहता या मिथ्या कथन ही

सत्य वचन है। उदाहरण के लिए यदि हमारे झूठ बोलने से यदि किसी प्राणी के प्राणों की रक्षा हो सकती है तो हमारा झूठ ही सत्य, वचन में परिवर्तित हो जायेगा।

अस्तेय : चोरी न करना अस्तेय कहलाता है। दूसरे की वस्तु को उसकी अनुमति के बिना ग्रहण करना। इसके अन्तर्गत चोरी करना, चोरी करने के लिए प्रेरित करना, नाप–तौल को कम व अधिक करना, मूल्य में वृद्धि यह सब अस्तेय के अन्तर्गत आते हैं। जिसका जैन दर्शन में निषेध किया गया है।

यहाँ यह समझने की बात है कि दान और अस्तेय में किसी एक की वस्तु दूसरे के पास चली जाती है। किन्तु दोनों में फर्क यह है कि दानी अपनी इच्छा से अपनी वस्तु दूसरे को देता है जबकि अस्तेय में दूसरों की वस्तु का हरण कर लिया जाता है।

ब्रह्मचर्य : जैन दर्शन में वासनाओं के परित्याग को ब्रह्मचर्य कहा गया है। यह केवल इन्द्रिय सुख का परित्याग नहीं है, अपितु सभी कामनाओं का त्याग है। दूसरे शब्दों में कहें तो मोक्ष प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति को अपने मानसिक और बाह्य, स्थूल एवं सूक्ष्म, लौकिक एवं पारलौकिक कामनाओं को त्याग देना चाहिए। इसमें गृहस्थ से यह अपेक्षा की गई है कि वह एक पत्नी व्रत एवं संयम रखेगा।

अपरिग्रह : विषयों की आसक्ति का त्याग देना अपरिग्रह कहलाता है। इसके अन्तर्गत मोक्षार्थी को अपनी पाँचों इन्द्रियों के विषयों का परित्याग कर देना चाहिए। यहाँ संन्यासियों से पूर्ण अपरिग्रह की अपेक्षा की गई है। जबकि गृहस्थों से केवल संन्तोष की ही अपेक्षा की गई है।

पंचमहाव्रत के अतिरिक्त जैन धर्म में कुछ अन्य नियमों और कार्यों का भी निर्देश दिया गया है। जिसका पालन जैन दर्शन के प्रत्येक अनुयायी के लिए आवश्यक माना गया है। ये नियम हैं– समिति, गुप्ति, दस धर्म, द्वादश अनुप्रेक्षाएँ, परिषह, धर्मानुक्षा।

1. **समिति :** जैन दर्शन में आदर्शात्मक जीवन जीने के लिए कुछ नियमों का पालन आवश्यक है। किसी भी जीव को कष्ट न पहुँचाते हुए अच्छा आचरण करना समिति है। समिति पाँच प्रकार की होती है–ईर्या समिति, भाषा समिति, एषण समिति, निक्षेपण समिति तथा प्रतिस्थापन समिति। **ईर्या समिति :** इसके अन्तर्गत चलने–फिरने, मूत्र–पुरीष आदि त्याग करने में सावधानी बरतने वाले नियमों के पालन का निर्देश होता है। **भाषा समिति :** बोलने के नियमों का ज्ञान। **एषण समिति** : भिक्षाटन के नियमों के पालन का निर्देश। **निक्षेपण समिति :** भिक्षा से प्राप्त धन में से बचाकर धार्मिक कार्य करने के लिए निर्देश। **प्रतिस्थापन समिति :** दान अथवा भिक्षा को अस्वीकार करने वाले नियमों का निर्देश।
2. **गुप्ति :** शरीर, वचन एवं मन पर संयम एवं नियंत्रण को गुप्ति कहा जाता है। यह तीन प्रकार की होती है– काय गुप्ति, वाग् गुप्ति तथा मनो गुप्ति। **काय गुप्ति–** शारीरिक क्रिया–कलापों पर संयम और नियन्त्रण। **वाग् गुप्ति :** वाणी के प्रयोग पर संयम और नियन्त्रण। **मनोगुप्ति :** मन की क्रियाओं, संकल्प, इच्छा और अभिलाषा पर संयम।
3. **अनुप्रेक्षा :** जीव एवं संसार के सम्बन्ध में बारह प्रकार की भावनाओं को अनुप्रेक्षा कहा जाता है।
4. **दस धर्म :** क्षमा, शौच, संयम, तप, त्याग, सरलता, विरक्ति, मृदुता और ब्रह्मचर्य ये दस प्रकार के धर्म है जो जैनदर्शन में निर्देशित किये गये हैं।

5. **परिषह** : इसमें भूख, प्यास, सर्दी–गर्मी, सुख–दुःख आदि पर कठोर अभ्यास द्वारा विजय पाने का निर्देश किया गया है।

6. **धर्मानुक्षा** : धर्म के मार्ग पर चलकर शान्ति और स्थिरता की प्राप्ति धर्मानुरक्षा कहलाती है।

इस प्रकार हमें यह ज्ञात होता है कि जैन दर्शन में मोक्ष प्राप्त करने के लिए मन की शुद्धता, सदाचार, संयम और समता का विशेष महत्त्व है।

3.2.3 बौद्धधर्म में निर्वाण प्राप्ति के उपाय

बौद्ध दर्शन में बुद्ध द्वारा दिये गये चार आर्य सत्य के उपदेश में तृतीय आर्य सत्य में निर्वाण अथवा मोक्ष का वर्णन किया गया है। निर्वाण प्रत्येक मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है जिसे प्राप्त करना चाहिए। यह बौद्ध दर्शन की मुख्य मान्यता है। गौतमबुद्ध के अनुसार दुःखों का मूल कारण अविद्या है। अतः दुःख को दूर करके दुःख का अन्त किया जा सकता है। दुःख निरोध तथागत बुद्ध के उपदेशों का सार है। यह निर्वाण अमृतपद और अभय रूप है जो अविद्या के समूल नाश के फलस्वरूप द्वादशनिदानचक्र अथवा प्रतीत्यसमुत्पाद चक्र के निरूद्ध होने से प्राप्त होता है।

बुद्ध द्वारा उपदेशित चतुर्थ आर्य सत्य ''दुःखनिरोधगामिनीप्रतिपद'' मोक्ष के साधन का मार्ग है। यह नैतिक एवं आध्यात्मिक साधन का भी मार्ग है। इसे मध्यम प्रतिपद् अथवा माध्यम मार्ग भी कहते हैं। यह अत्यधिक भोग विलास एवं शरीर को कष्ट पहुँचने वाले तप के बीच का मार्ग है। इसके आठ चरण है– 1. सम्यक् दृष्टि, 2. सम्यक् संकल्प, 3. सम्यक् वाक्, 4. सम्यक् कर्मान्त, 5. सम्यक् आजीव, 6. सम्यक् व्यायाम, 7. सम्यक् स्मृति, 8. सम्यक् समाधि।

निर्वाण प्राप्ति के लिए शील, समाधि, प्रज्ञा की शिक्षा, बौद्ध दर्शन में दी गई है। इसे त्रिशिक्षा भी कहते हैं। प्रज्ञा के अन्तर्गत प्रथम दो अष्टांगिक मार्ग सम्यक् दृष्टि और सम्यक् संकल्प आते हैं। शील के अर्न्तगत सम्यक् वाक्, सम्यक कर्मान्त, सम्यक अजीव और सम्यक् व्यायाम आते हैं। समाधि में सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि आते हैं।

1. **सम्यक् दृष्टि** : अविद्या के कारण जीव को नित्य अपरिवर्तनशील एवं जगत् को शाश्वत समझना मिथ्या दृष्टि है। सम्यक् दृष्टि वह है जिसमें चार आर्य सत्यों, अनात्मभाव एवं प्रतीत्यसमुत्पाद का दर्शन होता है।

2. **सम्यक् संकल्प** : सम्यक् ज्ञान हो जाना ही पर्याप्त नहीं है। उसके अनुसार जीवन बिताने का दृढ़ संकल्प ही सम्यक् संकल्प है।

3. **सम्यक् वाक्** : अप्रिय वचन, झूठ, निन्दा, छल आदि का प्रयोग न करना सम्यक् वाक् है।

4. **सम्यक् कर्मान्त** : सम्यक् ज्ञान और सम्यक् संकल्प का प्रयोग वाणी तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए इसका प्रयोग कर्म में भी दिखना चाहिए। यह सम्यक् कर्मान्त है।

5. **सम्यक् आजीव** : प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपना जीवन चलाने के लिए किसी न किसी काम का सहारा लेना पड़ता है। जिससे धन कमाया जा सकें। इस धन कमाने का आधार उचित और शुद्ध होना चाहिए यही सम्यक् आजीव है।

6. **सम्यक् व्यायाम :** अपने इन्द्रियों को प्रयत्नपूर्वक नियंत्रण में रखना ही सम्यक् व्यायाम है।

7. **सम्यक् स्मृति :** जो सम्यक् ज्ञान हो चुका है उसको हमेशा याद रखना ही सम्यक् स्मृति है।

8. **सम्यक् समाधि :** बौद्ध दर्शन के इन सात चरणों के लगातार अभ्यास से मनुष्य सम्यक् समाधि की अवस्था में पहुँचता है। जिसमें उसकी समस्त शंकाओं का समाधान हो जाता है।

इस अवस्था में आने पर साधक अर्हत् हो जाता है। इस अवस्था की विशेषता है कि साधक पूर्णरूप से निर्मल हो जाता है। इसमें सुख–दुःख आदि का निरोध हो जाता है और वह निर्वाण अथवा मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है जो अमृत स्वरूप है।

सांख्य–योग दर्शन में मोक्ष के उपाय : मोक्ष की प्राप्ति कैसे होगी? और इसे प्राप्त करने के कौन से साधन है? इन प्रश्नों पर विचार करते हुए सांख्य दर्शन मोक्ष या कैवल्य के साधन के रूप में ज्ञान या विवेक को मानता है। सांख्य दर्शन में विवेक ही वह उपाय है जिससे जड़ और चेतन (शरीर और आत्मा) तथा प्रकृति (जड़) और पुरुष (चेतन) के भेद को जाना जा सकता है। अतः सांख्य के अनुसार विवेक ही कैवल्य अथवा मोक्ष का साधन है।

मोक्ष के लिए यदि यह प्रश्न किया जाय की क्या मोक्ष कर्म और धर्म करने से भी प्राप्त हो सकता है? इसका उत्तर देते हुए सांख्य कहता है कि धर्म करने से मनुष्य स्वर्ग की प्राप्ति तो कर सकता है परन्तु मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकती है। इसी तरह कर्म करने से भी मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। हाँ! निष्काम कर्म करने से मोक्ष तो नहीं किन्तु ज्ञान अवश्य प्राप्त होता है। इसलिए सांख्य के अनुसार मोक्ष एकमात्र साधन विवेकज्ञान ही है। पुरुष का प्रकृति की विकृतियों से अलग होने का विवेक ही ज्ञान है। इसी ज्ञान से त्रिविध दुःखों– आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखों का नाश हो सकता है।

सांख्य दर्शन की स्पष्ट मान्यता है कि कर्म से मुक्ति नहीं मिल सकती परन्तु सांख्य दर्शन कैवल्य प्राप्ति से सम्बन्धित उपायों के विषय में मौन है। सांख्यकारिका में केवल यह उल्लेख मिलता है कि ''कैवल्य के लिए प्रकृति और पुरुष का एक दूसरे से सर्वथा भिन्न होने का ध्यान करना चाहिए।'' इस आधार पर कहा जा सकता है कि सांख्य दर्शन तत्त्वज्ञान अथवा विवेकज्ञान को कैवल्य का साधन मानता है। सांख्य का तत्त्वज्ञान ही विवेकज्ञान है अर्थात् प्रकृति और पुरुष के अलग–अलग होने का ज्ञान। पुरुष प्रकृति और उसके विकारों का ज्ञान प्राप्त करके अपने को उनसे अलग करके मुक्त हो जाता है। तत्त्वज्ञान हो जाने पर पुरुष को पुनः स्थूल और सूक्ष्म शरीर की प्राप्ति नहीं होती और वह सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाता है। सांख्य दर्शन के अनुसार जब यह भेद–ज्ञान मनन और निदिध्यासन से दृढ़ हो जाता है तब पुरुष अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

वस्तुतः सांख्य में किसी भी प्रकार के ईश्वर या कोई साधना पद्धति न होने के कारण इसमें वर्णित मोक्ष के उपाय ज्ञानमार्ग अथवा विवेक मार्ग अत्यन्त कठिन और नीरस लगता है। सांख्य दर्शन की इसी विकट समस्या के समाधान के लिए कालान्तर में उसके सहयोगी सम्प्रदाय योगदर्शन में महर्षि पतंजलि ने इसे सुगम और रूचिकर बनाने के लिए अष्टांग–योग की साधना पद्धति का विकास किया। चूँकि सांख्य दर्शन

निरीश्वरवादी दर्शन है। इसमें ईश्वर को स्वीकार नहीं किया गया है। महर्षि पतंजलि ने इसमें 'ईश्वर प्रणिधान' को भी जोड़ दिया। अब हम योगदर्शन की साधना पद्धति का अध्ययन करेंगे।

3.3 वैदिक परम्परा में मोक्ष के उपाय

3.3.1 वेदोपनिषद् में मोक्ष के उपाय

गीता में स्थितप्रज्ञ की अवधारणा ही आत्मसाक्षात्कार या मोक्ष की स्थिति है। इसे ब्रह्म में निवास करने की अवस्था भी कहा जाता है, जो ब्राह्मी स्थिति कहलाती है। इस अवस्था में परमात्मा के साथ अखण्ड सम्बन्ध भी होता है। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय सभी स्थितियों में समभाव या उदासीनता का भाव धारण किये रहता है। दूसरे शब्दों में कहे तो यह स्थिति तटस्थता की होती है।

गीता में स्थितप्रज्ञ को आदर्श के रूप में स्थापित किया गया है। यह कर्मयोगी है जो अनासक्त भाव से कार्य करते हुए ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का समन्वय करता है। गीता में स्थितप्रज्ञ के लिए कर्म का भी निर्धारण किया गया है। क्योंकि गीता ज्ञान और कर्म दोनों को आवश्यक मानती है।

गीता में मोक्ष प्राप्त व्यक्ति जब तक जीवन धारण किये रहता है तब तक कुछ न कुछ कर्म अवश्य करता रहता है। गीता में मुक्त व्यक्ति सामाजिक कर्तव्यों से मुक्त होता है फिर भी वह सामान्य मानव के प्रति संवेदनशील रहता है। स्थितप्रज्ञ सामान्य मानव के कल्याण के लिए लोक–संग्रह की भावना से कार्य तो करता है किन्तु वह अपने इन कर्मों से बन्धन में नहीं पड़ता। उसके सभी कार्य ईश्वर को समर्पित होते हैं। फलस्वरूप वह उन कर्मों से वैसे ही प्रभावित नहीं होता जैसे कमल कीचड़ से प्रभावित नहीं होता।

गीता (3/3) में मोक्ष–प्राप्ति के उपाय पर विचार करें तो यह ज्ञात होता है कि यहाँ दो प्रकार की साधनाएँ बतालाई गई हैं– प्रथम ज्ञानियों की ज्ञानयोग से। द्वितीय सामान्यजनों को निष्काम कर्मयोग से।

इससे स्पष्ट होता है कि गीता केवल ज्ञानियों को मुक्ति के उपाय नहीं बतलाती अपितु जो लोग अभी भी कर्मों में प्रवृत्त और आसक्त है उनके लिए भी मार्ग दिखलाती है। जो व्यक्ति अभी भी कर्मों में आसक्त है, उन्हें कर्मों को करते हुए अहंकार भाव और फलों के प्रति आसक्ति को धीरे–धीरे त्यागना है। फलों में आसक्ति को त्यागकर और स्वयं को (केवल ईश्वर द्वारा अपना काम करने के लिए कृपापूर्वक चुना गया) निमित्त समझकर कार्य करना ही निष्कामकर्मयोग है।

सांसारिक व्यक्ति के लिए अचानक ही निष्काम भाव से कार्य कर पाना बड़ा ही कठिन है। इसलिए गीता कर्मों के फल को ईश्वर को अर्पित कर देने कों कहती है। व्यक्ति निष्कामकर्मयोग का आदर्श तभी प्राप्त कर सकता है जब वह स्वयं के शरीर, मन, इन्द्रियों द्वारा किए गए सभी कर्मों में ईश्वर को देखें। जब तक यह स्थिति नहीं प्राप्त होती तब तक निष्कामकर्मयोग का आदर्श प्राप्त करना असम्भव है।

सांसारिक व्यक्ति को निष्कामकर्मयोग के आदर्श को प्राप्त करने के लिए अनिवार्य रूप से भक्ति की सहायता लेनी पड़ती है। भक्ति वह सीढ़ी है जहाँ भक्त अपने कर्मों को ईश्वर द्वारा प्रेरित अथवा ईश्वर द्वारा किया गया समझता है। अतः निष्कामकर्मयोग के आदर्श को प्राप्त करने के लिए अनिवार्य रूप से भक्त बनना पड़ता है।

इसलिए गीता सभी को (चाहे वह ईश्वर हो अथवा मुक्त पुरुष) निष्काम भाव से अपने धर्म (स्वधर्म) का पालन करने का आदेश देती है। गीता ईश्वर और मुक्त पुरुष को भी स्वधर्म के पालन का आदेश इसलिए दिया गया है कि कहीं कर्म में आसक्त सामान्यजन ईश्वर और मुक्त पुरुष का अनुकरण करके कर्मों का त्याग न कर दें। यदि सभी लोग कर्मों का त्याग कर देगें तो संसार में अव्यवस्था फैल जाएगी, इसीलिए गीता का स्थितप्रज्ञ समाज–कल्याण (लोक–संग्रह) के कार्यों को करता रहता है।

3.3.2 श्रीमद्भगवतगीता में मोक्ष के उपाय

गीता में स्थितप्रज्ञ की अवधारणा ही आत्मसाक्षात्कार या मोक्ष की स्थिति है। इसे ब्रह्म में निवास करने की अवस्था भी कहा जाता है, जो ब्राह्मी स्थिति कहलाती है। इस अवस्था में परमात्मा के साथ अखण्ड सम्बन्ध भी होता है। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय सभी स्थितियों में समभाव या उदासीनता का भाव धारण किये रहता है। दूसरे शब्दों में कहे तो यह स्थिति तटस्थता की होती है।

गीता में स्थितप्रज्ञ को आदर्श के रूप में स्थापित किया गया है। यह कर्मयोगी है जो अनासक्त भाव से कार्य करते हुए ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का समन्वय करता है। गीता में स्थितप्रज्ञ के लिए कर्म का भी निर्धारण किया गया है। क्योंकि गीता ज्ञान और कर्म दोनों को आवश्यक मानती है।

गीता में मोक्ष प्राप्त व्यक्ति जब तक जीवन धारण किये रहता है तब तक कुछ न कुछ कर्म अवश्य करता रहता है। गीता में मुक्त व्यक्ति सामाजिक कर्तव्यों से मुक्त होता है फिर भी वह सामान्य मानव के प्रति संवेदनशील रहता है। स्थितप्रज्ञ सामान्य मानव के कल्याण के लिए लोक–संग्रह की भावना से कार्य तो करता है किन्तु वह अपने इन कर्मों से बन्धन में नहीं पड़ता। उसके सभी कार्य ईश्वर को समर्पित होते हैं। फलस्वरूप वह उन कर्मों से वैसे ही प्रभावित नहीं होता जैसे कमल कीचड़ से प्रभावित नहीं होता।

गीता (3/3) में मोक्ष–प्राप्ति के उपाय पर विचार करें तो यह ज्ञात होता है कि यहाँ दो प्रकार की साधनाएँ बतालाई गई हैं– प्रथम ज्ञानियों की ज्ञानयोग से। द्वितीय सामान्यजनों को निष्काम कर्मयोग से।

इससे स्पष्ट होता है कि गीता केवल ज्ञानियों को मुक्ति के उपाय नहीं बतलाती अपितु जो लोग अभी भी कर्मों में प्रवृत्त और आसक्त है उनके लिए भी मार्ग दिखलाती है। जो व्यक्ति अभी भी कर्मों में आसक्त है, उन्हें कर्मों को करते हुए अहंकार भाव और फलों के प्रति आसक्ति को धीरे–धीरे त्यागना है। फलों में आसक्ति को त्यागकर और स्वयं को (केवल ईश्वर द्वारा अपना काम करने के लिए कृपापूर्वक चुना गया) निमित्त समझकर कार्य करना ही निष्कामकर्मयोग है।

सांसारिक व्यक्ति के लिए अचानक ही निष्काम भाव से कार्य कर पाना बड़ा ही कठिन है। इसलिए गीता कर्मों के फल को ईश्वर को अर्पित कर देने कों कहती है। व्यक्ति निष्कामकर्मयोग का आदर्श तभी प्राप्त कर सकता है जब वह स्वयं के शरीर, मन, इन्द्रियों द्वारा किए गए सभी कर्मों में ईश्वर को देखें। जब तक यह स्थिति नहीं प्राप्त होती तब तक निष्कामकर्मयोग का आदर्श प्राप्त करना असम्भव है।

सांसारिक व्यक्ति को निष्कामकर्मयोग के आदर्श को प्राप्त करने के लिए अनिवार्य रूप से भक्ति की सहायता लेनी पड़ती है। भक्ति वह सीढ़ी है जहाँ भक्त अपने कर्मों को

ईश्वर द्वारा प्रेरित अथवा ईश्वर द्वारा किया गया समझता है। अतः निष्कामकर्मयोग के आदर्श को प्राप्त करने के लिए अनिवार्य रूप से भक्त बनना पड़ता है।

इसलिए गीता सभी को (चाहे वह ईश्वर हो अथवा मुक्त पुरुष) निष्काम भाव से अपने धर्म (स्वधर्म) का पालन करने का आदेश देती है। गीता ईश्वर और मुक्त पुरुष को भी स्वधर्म के पालन का आदेश इसलिए दिया गया है कि कहीं कर्म में आसक्त सामान्यजन ईश्वर और मुक्त पुरुष का अनुकरण करके कर्मों का त्याग न कर दें। यदि सभी लोग कर्मों का त्याग कर देगें तो संसार में अव्यवस्था फैल जाएगी, इसीलिए गीता का स्थितप्रज्ञ समाज–कल्याण (लोक–संग्रह) के कार्यों को करता रहता है।

3.3.3 सांख्ययोग दर्शन में मोक्ष के उपाय

मोक्ष की प्राप्ति कैसे होगी? और इसे प्राप्त करने के कौन से साधन है? इन प्रश्नों पर विचार करते हुए सांख्य दर्शन मोक्ष या कैवल्य के साधन के रूप में ज्ञान या विवेक को मानता है। सांख्य दर्शन में विवेक ही वह उपाय है जिससे जड़ और चेतन (शरीर और आत्मा) तथा प्रकृति (जड़) और पुरुष (चेतन) के भेद को जाना जा सकता है। अतः सांख्य के अनुसार विवेक ही कैवल्य अथवा मोक्ष का साधन है।

मोक्ष के लिए यदि यह प्रश्न किया जाय की क्या मोक्ष कर्म और धर्म करने से भी प्राप्त हो सकता है? इसका उत्तर देते हुए सांख्य कहता है कि धर्म करने से मनुष्य स्वर्ग की प्राप्ति तो कर सकता है परन्तु मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकती है। इसी तरह कर्म करने से भी मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। हाँ! निष्काम कर्म करने से मोक्ष तो नहीं किन्तु ज्ञान अवश्य प्राप्त होता है। इसलिए सांख्य के अनुसार मोक्ष एकमात्र साधन विवेकज्ञान ही है। पुरुष का प्रकृति की विकृतियों से अलग होने का विवेक ही ज्ञान है। इसी ज्ञान से त्रिविध दुःखों– आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखों का नाश हो सकता है।

सांख्य दर्शन की स्पष्ट मान्यता है कि कर्म से मुक्ति नहीं मिल सकती परन्तु सांख्य दर्शन कैवल्य प्राप्ति से सम्बन्धित उपायों के विषय में मौन है। सांख्यकारिका में केवल यह उल्लेख मिलता है कि ''कैवल्य के लिए प्रकृति और पुरुष का एक दूसरे से सर्वथा भिन्न होने का ध्यान करना चाहिए।'' इस आधार पर कहा जा सकता है कि सांख्य दर्शन तत्त्वज्ञान अथवा विवेकज्ञान को कैवल्य का साधन मानता है। सांख्य का तत्त्वज्ञान ही विवेकज्ञान है अर्थात् प्रकृति और पुरुष के अलग–अलग होने का ज्ञान। पुरुष प्रकृति और उसके विकारों का ज्ञान प्राप्त करके अपने को उनसे अलग करके मुक्त हो जाता है। तत्त्वज्ञान हो जाने पर पुरुष को पुनः स्थूल और सूक्ष्म शरीर की प्राप्ति नहीं होती और वह सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाता है। सांख्य दर्शन के अनुसार जब यह भेद–ज्ञान मनन और निदिध्यासन से दृढ़ हो जाता है तब पुरुष अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

वस्तुतः सांख्य में किसी भी प्रकार के ईश्वर या कोई साधना पद्धति न होने के कारण इसमें वर्णित मोक्ष के उपाय ज्ञानमार्ग अथवा विवेक मार्ग अत्यन्त कठिन और नीरस लगता है। सांख्य दर्शन की इसी विकट समस्या के समाधान के लिए कालान्तर में उसके सहयोगी सम्प्रदाय योगदर्शन में महर्षि पतंजलि ने इसे सुगम और रूचिकर बनाने के लिए अष्टांग–योग की साधना पद्धति का विकास किया। चूँकि सांख्य दर्शन निरीश्वरवादी दर्शन है। इसमें ईश्वर को स्वीकार नहीं किया गया है। महर्षि पतंजलि ने इसमें 'ईश्वर प्रणिधान' को भी जोड़ दिया। अब हम योगदर्शन की साधना पद्धति का अध्ययन करेंगे।

3.3.4 योगदर्शन में कैवल्य प्राप्ति के उपाय

हमने यह जाना कि सांख्य दर्शन कैवल्य प्राप्ति के साक्षात् उपाय के विषय में मौन है। जबकि योगदर्शन क्रियापरक साधनपद्धति का हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। योग शब्द 'युज्' धातु से बनता है जिसका सामान्य अर्थ 'जुड़ना' है। परन्तु योगदर्शन में योग का अर्थ जुड़ना नहीं अपितु समाधि अथवा कठोर अभ्यास है। कठोर अभ्यास द्वारा प्रकृति और पुरुष के मध्य वियोग को जानना है। योग का अर्थ समाधि के लक्ष्य तक पहुँचाने का मार्ग भी है।

हमने यह जाना की योगदर्शन के अनुसार पुरुष चेतन, अविकारी और शरीर–मन–इंद्रिय–बुद्धि से अलग हैं किन्तु अज्ञान के कारण वह प्रकृति की चित्तवृत्तियों से एकाकार स्थापित कर लेता है। पुरुष के प्रतिबिम्ब से जड़ चित्तवृत्तियाँ चेतन हो जाती है और पुरुष में इन वृत्तियों के आरोप से पुरुष बुद्धि के गुणों को अपना गुण समझता हुआ 'मैं सुखी हूँ', 'मैं दुःखी हूँ', 'मैं कर्त्ता हूँ', 'मैं भोक्ता हूँ', 'मैं संकल्प लेता हूँ' इत्यादि समझने लगता है।

अनादि काल से प्रवाहमान पुरुष और बुद्धि का यह संयोग योग दर्शन में जीव के बन्धन का कारण है। अतः मोक्ष के लिए जीव की समस्त चित्त वृत्तियों का सदैव के लिए शान्त जाना आवश्यक है, जो अभ्यास और वैराग्य से सम्भव है। अभ्यास से तात्पर्य उस प्रयत्न से है जो विचार की शक्ति को स्थिरता की ओर ले जाता है तथा वैराग्य से तात्पर्य सांसारिक और स्वर्गिक (सांसारिक एवं पारलौकिक) विषयों के प्रति उदासीनता या विरक्ति से है। इसीलिए पतंजलि के अनुसार कैवल्य का एकमात्र उपाय चित्तवृत्तियों का निरोध है और यही योग है।

योगदर्शन में मोक्ष के उपाय के रूप में स्वीकृत अष्टांगयोग में आठ अंग है। जो निम्नलिखित है– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें से प्रथम पाँच योग के बहिरंग साधन है तथा अन्तिम तीन योग के अन्तरंग साधन है। योग दर्शन में मोक्ष के उपाय के रूप में स्वीकृत अष्टांगयोग के कठोर पालन से मुक्ति की प्राप्ति सम्भव है–

1. **यम :** शरीन, मन और वाणी का संयम यम कहलाता है। इसके पाँच प्रकार है– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। **अहिंसा :** मन, वचन और कर्म से प्राणियों के प्रति द्वेष एवं हिंसा न करना अहिंसा कहलाता है। **सत्य :** सत्य का अर्थ मिथ्या वचन का त्याग करने से है। **अस्तेय** : दूसरो के धन को न चुराना अस्तेय है। **ब्रह्मचर्य :** मन, वचन और कर्म से काम सुख का त्याग ब्रह्मचर्य है। **अपरिग्रह :** आवश्यकता से अधिक धन का संचय न करना अपरिग्रह है।

2. **नियम :** सद्गुणों का अभ्यास नियम कहलाता है इसके चार प्रकार हैं– शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर–प्रणिधान। **शौच :** शरीर की शुद्धता तथा करुणा आदि गुणों से चित्त की शुद्धि शौच है। **सन्तोष :** समुचित प्रयास से जो भी प्राप्त हो उसे पर्याप्त मानना सन्तोष है। **तप :** ऋतुओं को सहन करने का अभ्यास, कठिन व्रत का पालन तप है। **स्वाध्याय :** धर्म ग्रन्थों एवं श्रुतियों का अध्ययन करना। **ईश्वर–प्रणिधान :** ईश्वर का ध्यान करना।

3. **आसन :** यह शरीर का संयम है, आसन का अर्थ है शरीर को ऐसी स्थिति में रखना जिसके निश्चल होकर देर तक सुखपूर्वक रह सकें।

4. **प्राणायाम :** प्राण वायु का संयम प्राणायाम है। इसके अन्तर्गत श्वाँस खीचना, फिर उसे रोकना तथा श्वाँस छोड़ना प्राणायाम कहलाता है।

5. **प्रत्याहार :** इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाना प्रत्याहार है।

6. **धारणा :** किसी स्थान विशेष पर चित्त को स्थिर करने को धारणा कहते हैं। इसके अनेक स्थान है। जैसे–जैसे नाभि चक्र, जीभ का आगे का हिस्सा आदि। धारणा का विषय बाहरी पदार्थ भी हो सकता है। जैसे किसी देवता की प्रतिमा आदि।

7. **ध्यान :** ध्यान का अर्थ एकाग्रता है। इसका अर्थ है ध्येय वस्तु का निरंतर मनन।

8. **समाधि :** यह योग की साधना का लक्ष्य है इस अवस्था में जीव का बाह्य जगत् के साथ सम्बन्ध टूट जाता है और वह अपने नित्य और शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। यह सरलता से प्राप्त नहीं किया जा सकता इसके लिए निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार सांख्य–योग दर्शन में मोक्ष के लिए कैवल्य का प्रयोग किया गया है। कैवल्य का अर्थ है 'केवल उसी का होना'। एकीकरण का नाम ही कैवल्य है। केवल अपने वास्तविक रूप को प्राप्त कर लेना तथा किसी के साथ उसका सम्बन्ध न होना ही कैवल्य है। यह निरन्तर कठिन अभ्यास से सहज ही प्राप्त हो सकता है।

3.3.5 न्यायदर्शन में मोक्ष के उपाय

न्याय दर्शन भी मोक्ष को परम पुरुषार्थ मानता है। यह मोक्ष को अपवर्ग कहता है। अपवर्ग का अर्थ है आत्मा का शरीर और इन्द्रियों के बन्धन से छुटकारा पाना। इसकी प्रमाणमीमांसा एवं प्रमेयमीमांसा मोक्ष के लिए ही विकसित हुई है। न्याय के अनुसार प्रमाण और प्रमेय सोलह पदार्थों के ज्ञान से जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती है। जीव को दुःखों की प्राप्ति तब होती है जब वह अविद्या द्वारा बन्धनग्रस्त होता है। अविद्या से ग्रसित आत्मा का शरीर एवं इन्द्रियों से युक्त होकर बार–बार जन्म लेकर अनेक प्रकार के दुःखों को भोगती है।

आत्मा का शरीर और इन्द्रियों में जकड़ना मिथ्याज्ञान है। न्याय के अनुसार मिथ्याज्ञान ज्ञान का अभाव ही नहीं विपरीत ज्ञान भी है। इसके कारण आत्मा अपने से भिन्न पदार्थों के तादात्म्य कर लेती है और सुख–दुःख आदि आगन्तुक गुणों को अपना वास्तविक गुण समझ लेती है। जिनकी उत्पत्ति शरीर और इन्द्रियों के साथ उसका साहचर्य होने से होती है। इस प्रकार मिथ्याज्ञान के कारण आत्मा में राग–द्वेष एवं मोह उत्पन्न होते हैं और आत्मा कर्मों में प्रवृत होकर विभिन्न प्रकार के दुःखों को भोगती है।

मोक्ष के उपाय : न्याय के अनुसार तत्त्वज्ञान से ही मुक्ति अथवा मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस तत्त्वज्ञान के अनुसार शरीर को आत्मा न समझना है। आत्मा का वास्तविक ज्ञान ही तत्त्वज्ञान है। इसी से मुक्ति मिलती है। मुक्ति के लिए नैतिक आचरण आवश्यक है। इसका अर्थ है इच्छाओं और प्रवृत्तियों का पूर्ण दमन।

न्यायकन्दली के रचनाकार श्रीधराचार्य तत्त्वज्ञान के लिए श्रद्धा का होना आवश्यक मानते हैं। उनके अनुसार श्रद्धा कुलीन व्यक्ति में उत्पन्न होती है अकुलीन में श्रद्धा नहीं होती। बिना श्रद्धा के जिज्ञासा नहीं होती और बिना जिज्ञासा के तत्त्वज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। तत्त्वज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता है। अतः तत्त्वज्ञान ही मोक्ष का प्रमुख साधन है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन के द्वारा ही तत्त्वज्ञान का साक्षात्कार होता

है। यथार्थ ज्ञान को ही साक्षात्कार कहते हैं।

अतः न्याय दर्शन में तत्त्वज्ञान अथवा मोक्ष के लिए चार साधनों– श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार को आवश्यक मानता है। श्रवण का अर्थ है– शास्त्रों अर्थात् वेद, उपनिषद्, पुराण, धर्मशास्त्र में कहे गये आत्मा विषयक उपदेशों को सुनना। मनन का अर्थ है– युक्ति तथा तर्क के द्वारा उन उपदेशों पर विचार करना या मनन करना। निदिध्यासन का अर्थ है– श्रवण और मनन द्वारा किये गये विषयों का उसी प्रकार ध्यान करना। इसके बाद पदार्थ के यथार्थ स्वरूप को समझना साक्षात्कार है। इसी साक्षात्कार को ही यथार्थ ज्ञान या तत्त्वज्ञान कहा जाता है और इसी तत्त्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

न्याय के मोक्ष सम्बन्धी मत में अष्टांगयोग को भी तत्त्वज्ञान का साधन बतलाया गया है। अष्टांगयोग के अनुष्ठान से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है। तत्त्वज्ञान से आत्मा के वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार होता है। यह आत्मसाक्षात्कार न्यायदर्शन में मोक्ष का प्रमुख साधन है।

''न्यायभाष्यवार्तिक'' के रचनाकार उद्योतकराचार्य भी धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन उनके मनन और ध्यान का आदेश देते हैं। इसके अतिरिक्त वे शान्ति और सुख की प्राप्ति के लिए भक्ति का भी निर्देश देते हैं।

वास्तव में मोक्ष के उपाय के रूप में न्याय दर्शन मनुष्य के नैतिक आचरण पर बल देता है। इसके अनुसार सुकर्मों को करने से व्यक्ति इस योग्य हो जाता है कि वह शरीर और इन्द्रियों से आत्मा को अलग जान सकें।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि न्याय दर्शन में शुद्ध नैतिक आचरण, श्रवण–मनन–निदिध्यासन तथा साक्षात्कार मुक्ति के एकमात्र उपाय है जो तत्त्व के वास्तविक स्वरूप को हमारे सम्मुख रखते हैं।

3.3.6 वैशैषिकदर्शन में मोक्ष के उपाय

न्याय दर्शन के अंग वैशेषिक दर्शन में मोक्ष को निःश्रेयस के रूप में वर्णित किया गया है। महर्षि कणाद के अनुसार ''यतोऽभ्युदयनिः श्रेयसं सिद्धि स धर्मः''। अर्थात् धर्म वह है जिससे मनुष्य का अभ्युदय (उन्नति) हो और जो निःश्रेयस (मोक्ष) की प्राप्ति में सहायक हो, वही धर्म है। यहाँ धर्म को जीवन की पूर्णता के लिए आवश्यक बताया गया है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार सांसारिक उन्नति और आध्यात्मिक उत्थान दोनों का महत्त्व है। इसमें व्यवहार और परमार्थ दोनों को उचित स्थान दिया गया है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार निःश्रेयस की प्राप्ति के लिए धर्म द्वारा निर्धारित कर्त्तव्य का निर्वाह अनिवार्य है।

''पदार्थधर्मसंग्रह'' अथवा ''प्रशस्तपादभाष्य'' ग्रन्थ के रचनाकार प्रशस्तपाद के अनुसार सबसे उच्च श्रेणी का सुख ज्ञानी पुरुषों का सुख है जो पदार्थ की स्मृति, इच्छा, चिन्तन जैसे सभी प्रकारों से स्वतन्त्र है तथा जो उनके ज्ञान, मन की शक्ति, सन्तोष और सद्गुणों के विशिष्ट स्वभाव के कारण होता है।

जैसा कि हमें ज्ञात है कि वैशेषिक दर्शन न्यायदर्शन का ही अंग है इसीलिए वह न्याय के मोक्ष सम्बन्धी सभी मतों से पूरी सहमत है। न्याय के अनुरूप ही वैशेषिक दर्शन भी तत्त्वज्ञान अथवा मोक्ष के लिए चार साधनों– श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार को आवश्यक मानता है।

''प्रशस्तपादभाष्य'' ग्रन्थ के अनुसार आत्मा के यथार्थ स्वरूप को जानना ही आत्मा का साक्षात्कार है। आत्मा का साक्षात्कार हो जाने पर जीव संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाने पर ईंधन के जल जाने पर शान्त अग्नि के समान यह जीव शान्त हो जाता है। इसी अवस्था को वैशेषिक दर्शन में मोक्ष कहा गया है।

निःश्रेयस की प्राप्ति के लिए वैशेषिक दर्शन में धार्मिक जीवन व्यतीत करना आवश्यक बताया गया है। जैसे श्रद्धा, अहिंसा, प्राणि के प्रति दया, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, मन की शुद्धि, विशिष्ट देवता की भक्ति इन सभी का निर्वाह करते हुए मनुष्य मोक्ष की ओर बढ़ता है। यहाँ निःश्रेयस की प्राप्ति में ''अदृष्ट'' को बहुत महत्त्व दिया गया है।

वैशेषिक के अनुसार धर्म–अधर्म या अदृष्ट के संग्रह के कारण शरीर का धारण करना आवश्यक है। जब तक अदृष्ट आदि से छुटकारा नहीं मिलता तब तक निःश्रेयस सम्भव नहीं है। जब तक हम इच्छा और द्वेष से कार्य करते रहेंगे। तब तक हम धर्म और अधर्म को संचित करते रहेंगे और संचित कर्मों के कारण बारम्बार शरीर धारण करते रहेंगे। यह देह ही भोग का स्थान है। अदृष्ट के साथ संयोग और उसका कार्य रूप देह ही संसार है, उससे पृथक् हो जाना ही मोक्ष है।

3.3.7 मीमांसादर्शन में मोक्ष के उपाय

जैसा कि हमें पहले से ही ज्ञात है कि मीमांसा दर्शन (जैमिनी और शबर के काल में) स्वर्ग की प्राप्ति ही मोक्ष थी। इन आचार्यों ने स्वर्ग के जीवन का तो मार्ग बतलाया था किन्तु मुक्ति का निर्देश नहीं किया था। परन्तु बाद के मीमांसा के आचार्यों के विचारों में मोक्ष–चिन्तन सिद्धान्त के रूप में सम्मिलित हो गया। मीमांसा की मान्यतानुसार जो वेद से ज्ञात हो और श्रेय का साधन हो धर्म कहलाता है। जो वेद से निषिद्ध हो तथा अनिष्ट का साधन हो अधर्म कहलाता है।

मीमांसा के अनुसार आत्मा का अपने से भिन्न वस्तुओं से सम्बन्ध होना बन्ध है। यहाँ आत्मा को बाँधने वाले तीन प्रकार के बन्धनों का निर्देश किया गया है। ये बन्धन है– भोगायतन शरीर (भोगने वाला शरीर), भोग–साधन इन्द्रियाँ और भोग के विषय।

मीमांसा दर्शन के दोनों सम्प्रदायों (कुमारिल एवं प्रभाकर) के चिन्तन में मोक्ष प्राप्ति के साधन और उसको प्राप्त करने के उपाय के बारे में बतलाया गया है। दोनों ही सम्प्रदायों ने धर्म और अधर्म तत्त्वों का विचार कर मोक्ष के उपाय की चर्चा की है।

प्रभाकर के मत में समस्त धर्म और अधर्म का लोप हो जाने पर शरीर का आत्यन्तिक नाश हो जाता है और सांसारिक बन्धनों से छुटकारा मिल जाता है । इसे ही मोक्ष कहा जाता है। प्रभाकर केवल दुःख की निवृत्ति को ही नहीं अपितु सुख–दुःख दोनों की समाप्ति को मोक्ष कहते हैं। वह आनन्द या परमानन्द की अवस्था को मोक्ष नहीं मानते हैं। उनके मत में आत्मा का वास्तविक स्वरूप में अवस्थित हो जाना ही मोक्ष है।

कुमारिल के अनुसार समस्त दुःखों से रहित तथा त्रिविध बन्धनों से मुक्त होकर आत्मा का अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाना ही मोक्ष है। कुमारिल आनन्द की अवस्था को मोक्ष नहीं मानते।

कुमारिल द्रव्य गुण कर्म इनके वेद विहित होने से इन तीनों को धर्म मानते हैं। प्रभाकर के अनुसार यज्ञजन्य कर्म तथा स्वर्ग आदि फल का साधन है उसे अपूर्व, नियोग या धर्म कहते हैं।

कुमारिल मोक्ष की प्राप्ति के लिए ज्ञान और कर्म दोनों को आवश्यक मानते हैं। कुमारिल मोक्ष को आत्मा का साक्षात्कार मानते हैं। कुमारिल की यह अवधारणा अद्वैत वेदांत से मेल खाती है। कुमारिल आगे यह भी कहते हैं कि मोक्ष के लिए केवल ज्ञान पर्याप्त नहीं है, अपितु इसके लिये ज्ञान युक्त कर्म भी आवश्यक है।

इस प्रकार कुमारिल ज्ञान–कर्म–समुच्चयवाद की स्थापना करते हैं। उन्होंने मोक्ष के साधन के रूप में आत्मज्ञान की आवश्यकता तथा कर्म के अनुष्ठान को स्वीकार किया है। वे भक्ति, उपासना या ध्यान पर बल देते हैं। कर्म और उपासना आत्मज्ञान की उत्पत्ति में सहायक है। जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसमें केवल ज्ञान को मोक्ष के लिए अपर्याप्त माना जाता है। ज्ञान केवल भविष्य में पाप और पुण्य के संचय को रोकता है।

प्रभाकर के मत में आत्मा जड़ है। प्रत्येक ज्ञान में वह कर्ता के रूप में प्रत्यक्ष दिखता है। मोक्ष प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह निषिद्ध कर्म न करें। इन्हें करने से दुःख भोगना पड़ता है।

मीमांसा के अनुसार नित्य तथा नैमित्ति कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिए। इन्हें त्यागने से पाप के भागी होगें और यदि करते रहेंगे तो पाप नहीं लगेगा। कहने का तात्पर्य है कि जो शरीर के बन्धन से छुटकारा पाना चाहता है उसे काम्य और निषिद्ध कर्म नहीं करने चाहिये परन्तु पहले से संचित पापों के नाश के लिये उसे नित्य नैमित्तिक कर्म अवश्य करने चाहिये।

इन कर्मों के करने के साथ–साथ आत्म ज्ञान प्राप्त करने के पुराने धर्म और अधर्म नष्ट हो जाते हैं और उनका भविष्य में संचय नहीं होता। आत्मज्ञान को मोक्ष का साधन नहीं समझना चाहिए। आत्मज्ञान को मोक्ष का साधन नहीं समझना चाहिए। आत्मज्ञान के साथ–साथ वेद विहित कर्म भी करते रहना चाहिए। इस प्रकार प्रभाकर और कुमारिल दोनों ज्ञान और कर्म के समुच्चय को मोक्ष का उपाय मानते हैं।

3.3.8 अद्वैत वेदान्त में मोक्ष के उपाय

अद्वैत वेदांत मोक्ष के सन्दर्भ में पूर्ण रूप से औपनिषदिक सिद्धान्तों का पालन करता है। उपनिषद् कर तरह ही अद्वैत वेदांत में ज्ञान के माध्यम से मोक्ष प्राप्त होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि अद्वैत वेदांत में मोक्ष का साधन ज्ञान मार्ग है। ज्ञान के अभाव में मोक्ष सम्भव नहीं है। अद्वैत दृष्टि में अज्ञान जीव के बन्धन का कारण है। अतः मोक्ष के लिए अज्ञान का नष्ट होना आवश्यक है जो ज्ञान से ही सम्भव है।

आचार्य शंकर कृत अद्वैतवेदान्त में ज्ञान सबसे श्रेष्ठ मार्ग के रूप में चित्रित है। यह सांख्य के ज्ञान मार्ग से भिन्न है। इसलिये शंकर सांख्य के ज्ञान मार्ग को अवैदिक कहते हैं।

शंकराचार्य कर्म एवं भक्ति को भी मोक्ष के रूप में अपर्याप्त मानते हैं। फिर भी वे उनकी सीमित उपयोगिता को स्वीकार करते हैं। अद्वैत वेदांत में मोक्ष के साधन के विषय में कुछ तथ्य महत्त्वपूर्ण है–

1. कर्म से मुक्ति सम्भव नहीं है। शंकर के अनुसार मोक्ष को कर्म का फल मानने से मोक्ष नश्वर हो जायेगा। उनकी दृष्टि में कर्म का फल उत्पाद्य, विकार, प्राप्त तथा संस्कार से युक्त होता है। जबकि मोक्ष न तो उत्पाद्य है, न प्राप्त है, न विकार है और न संस्कार्य है।

2. मोक्ष भक्ति के माध्यम से भी सम्भव नहीं है। चूँकि भक्ति का आधार भेद बुद्धि या द्वैत बुद्धि है। यह आराध्य एवं आराधक अर्थात् भगवान् एवं भक्त की भेद बुद्धि पर आधारित है। भेद बुद्धि का आधार अविद्या है। इसलिए अविद्या ही भक्ति का आधार है। इसलिए भक्ति से मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता।

यहाँ प्रश्न है कि क्या शंकर की दृष्टि में कर्म और भक्ति बिल्कुल निरर्थक है? इसका उत्तर यह दिया जा सकता है कि शंकर कर्म एवं भक्ति की उपयोगिता को कुछ अंशों में स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार कर्म से चित्त–शुद्धि होती है और भक्ति चित्त की एकाग्रता में सहायक है। ज्ञान की प्राप्ति में चित्त–शुद्धि एवं चित्त की एकाग्रता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार कर्म और भक्ति ब्रह्मज्ञान में कुछ ही अंशों तक सहायक है।

ज्ञान के माध्यम से ही मोक्ष सम्भव है : शंकर के अनुसार ज्ञानमार्ग का अनुसरण करके ही मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। क्योंकि ज्ञान से ही अज्ञान (जो बन्धन का कारण है) का निवारण सम्भव है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि ज्ञान से मोक्ष–प्राप्ति की बात करना भी उपचार मात्र है। क्योंकि ज्ञान मोक्ष को उत्पन्न नहीं करता। ज्ञान केवल अविद्या को नष्ट करता है, जिससे आत्मा या ब्रह्म का अपरोक्षानुभव होता है। वास्तव में अद्वैत वेदांत में अविद्यानिवृति, आत्मसाक्षात्कार, अपरोक्षानुभूति, ब्रह्मभाव और मोक्ष को एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि अद्वैत वेदांत में सभी लोग ज्ञानमार्ग के अधिकारी नहीं है। ज्ञानमार्ग का अधिकारी केवल वही है जो 'साधनचतुष्ट्य' से युक्त है। साधनचतुष्ट्य व्यक्ति के चित्त को शुद्ध करके उसे ज्ञानमार्ग के योग्य बनाता है। इससे वैराग्य उत्पन्न होता है। जो ज्ञानमार्ग के लिए आवश्यक है। ये साधन चतुष्ट्य निम्नलिखित हैं–

1. **नित्यानित्यवस्तुविवेक :** मोक्षार्थी में नित्य और अनित्य वस्तु का विवेक होना चाहिए अर्थात् सांसारिक पदार्थ अनित्य है और जीव या ब्रह्म ही नित्य है। ऐसा भाव होना चाहिए।

2. **इहामुत्रार्थभोगविराग :** मोक्षार्थी को सांसारिक और स्वर्गिक (लौकिक एवं पारलौकिक) भोगों में अनासक्त होना चाहिए। कहने का अर्थ है कि उसे ऐहिक और अलौकिक सुखभोग की कामना छोड़ देनी चाहिए।

3. **शमदमादिसाधनसम्पत् :** मोक्षार्थी को शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरति और तितिक्षा इन छः गुणों से युक्त होना चाहिए। मन का संयम शम है। इन्द्रियों पर नियंत्रण दम है। शास्त्र में निष्ठा श्रद्धा है। चित्त को ज्ञान के मार्ग में लगाया तथा तर्क द्वारा शंकाओं का निवारण करना समाधान है। विषय–वासना से दूर रहना उपरति है। शीत, ग्रीष्म आदि ऋतुओं को सहन करने का अभ्यास तितिक्षा है।

4. **मुमुक्षुत्व :** मोक्षार्थी का मोक्ष प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प लेना ही मुमुक्षुत्व कहलाता है। इन चार साधनों में मुमुक्षुत्व और वैराग्य को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। इन दोनों के होने पर शम, दम आदि सफल हो जाते हैं।

इन सब साधनों के होते हुए भी शंकर ने गुरुकृपा को अत्यधिक महत्त्व दिया है। श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ गुरु की कृपा को वेदांत में उच्च स्थान दिया गया है। श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ गुरु वह है जो निष्पाप हो, कामनाओं से शून्य हो, ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ हो, ब्रह्मनिष्ठ हो, अकारण दयासिन्धु हो, शरण में आये हुए की रक्षा करें, सज्जनों के हितैषी हो। ऐसे

गुरु की शरण में जाकर मोक्ष के लिए प्रार्थना करनी चाहिए फिर गुरु की कृपा और उनके उपदेश से साधक को अपरोक्षानुभूति होती है।

अद्वैत वेदांत के अनुसार इन चारों योग्यताओं से युक्त साधक ही ज्ञान मार्ग का अधिकारी है। इसके अतिरिक्त यहाँ श्रवण, मनन और निदिध्यासन की भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यह आत्मलाभ के लिए वेदान्त का अभ्यास है। बृहदारण्यकोपनिषद् के ऋषि याज्ञवल्क्य के अनुसार आत्मा के श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन से सब कुछ ज्ञात हो जाता है।

शंकर के अनुसार गुरु तथा श्रुति के उपदेशों का नियमित स्वाध्याय करना चाहिए। गुरु के मुख से उपनिषदों की शिक्षाओं को सुनना श्रवण है। गुरु या श्रुति द्वारा प्राप्त ज्ञान के विषयों का स्वतः तार्किक विवेचन करना मनन कहलाता है। मनन में श्रद्धा से प्राप्त ज्ञान व्यक्तिगत आस्था या बौद्धिक आस्था में परिवर्तित हो जाता है। यह संशय आदि के निराकरण में सहायक भी होता है। मनन से बौद्धिक आस्था उत्पन्न होने के बाद निदिध्यासन या ध्यान करना चाहिए। जीव और ब्रह्म की एकता का ध्यान करते रहना निदिध्यासन है। इसका अभ्यास तब तक करते रहना चाहिए जब तक कि जीव ब्रह्म के एकत्व की अपरोक्ष अनुभूति न हो जाए। इस एकता की अपरोक्षानुभूति होने पर मुमुक्षु जीवन्मुक्त हो जाता है। यही अद्वैतवेदान्त में मोक्ष के उपाय के रूप में वर्णित है।

3.3.9 विशिष्टाद्वैत वेदान्त में मोक्ष के उपाय

रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद में भी उपनिषदों द्वारा निर्देशित मोक्ष (क्रम मुक्ति) मार्ग को स्वीकार किया गया है। विशिष्टाद्वैत दर्शन में भक्तिमार्ग को मोक्ष का साधन माना गया है। रामानुजाचार्य मोक्ष के लिए ईश्वर की अनुकम्पा को आवश्यक मानते हैं। बिना ईश्वर की अनुकम्पा के मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती।

रामानुज कर्मयोग एवं ज्ञानयोग को भक्तियोग में सहायक मानते हैं। उनके अनुसार कर्म एवं ज्ञान द्वारा ही भक्ति का उदय होता है। अतः कर्मयोग एवं ज्ञानयोग भक्ति के अंग है। रामानुज के अनुसार कर्मयोग का अर्थ है निष्कामभाव से वेदों में कहे गये कर्मकाण्ड या नित्य–नैमित्तिक कर्मों के सम्पादन से है। इन कर्मकाण्डों को करने से पूर्वजन्मों के अर्जित वे संस्कार नष्ट हो जाते है जो ज्ञान–प्राप्ति में बाधक है। उनकी मान्यता है कि इन कर्मों के सविधि सम्पादन से सत्त्वशुद्धि होती है तथा चित्त निर्मल होता है।

रामानुज के अनुसार भक्तियोग के पूर्व ज्ञानयोग भी आवश्यक है। ज्ञानयोग आत्मा का सतत् अभ्यास है। यह योग्य गुरु की सन्निधि में शास्त्रों के अध्ययन से जीव के वास्तविक स्वरूप को जानकर उसका अध्ययन करना है। उससे उसे यह ज्ञान होता है कि वह शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि उपाधियों से भिन्न है। इस प्रकार वह जान लेता है कि वह ईश्वर का अंश है और ईश्वर उसका अन्तर्यामी है।

किन्तु रामानुज के अनुसार आत्मज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। यह केवल और केवल ईश्वर की कृपा से प्राप्त होती है। ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के लिए रामानुज भक्तियोग के सिद्धान्त को हमारे सामने लाते हैं। उनके अनुसार मुक्ति भक्तियोग से ही प्राप्त होती है। मोक्ष वेदान्त के कोरे ज्ञान से नहीं मिल सकता। यदि ऐसा होता तो वेदान्त के सभी अध्येता मुक्त हो जाते। मोक्ष के लिए आत्मज्ञान के साथ भक्ति का होना अनिवार्य है।

भक्ति का अर्थ है प्रपत्ति और स्मृति। प्रपत्ति या शरणागति ईश्वर को प्राप्त करने का सरल एवं सुनिश्चित साधन है। प्रपत्ति का द्वार सभी के लिए सदा खुला रहता है। इसमें वर्ण, जाति, लिंग आदि का कोई भेद नहीं है। श्रीमद्भागवतमहापुराण (7/7/52) में कहा गया है– भगवान् केवल निश्छल निर्मल भक्ति से प्रसन्न होते हैं। इसी ग्रन्थ में नवधाभक्ति–श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन का उल्लेख प्राप्त होता है। इस नवधाभक्ति में आत्मनिवेदन को शरणागति या प्रपत्ति की पराकाष्ठा कहा गया है।

प्रपत्ति या शरणागति छः प्रकार की होती हैं–1. जो भगवत्प्राप्ति के अनुकूल हो उसका संकल्प। 2. जो प्रतिकूल हो उसका निषेध। 3. भगवान् रक्षा करेंगे यह दृढ़ विश्वास। 4. भगवान् का रक्षक या स्वामी के रूप में वरण। 5. भगवान् के प्रति पूरी तरह से आत्मसर्मपण। 6. भगवान् पर पूरी तरह से आश्रित रहने का दीन भाव।

प्रपत्ति भगवान् के प्रति उत्कट प्रेम है, प्रेमा भक्ति है। रामानुज ने इसके साथ ''ध्रुवास्मृति'' को भी जोड़ दिया है। स्मृति का अर्थ है ध्यान या उपासना। ध्रुवास्मृति का अर्थ है ईश्वर का निरन्तर ध्यान या ईश्वर का तैलधारावत् अविच्छिन्न स्मरण। ध्रुवास्मृति में प्रेम और ज्ञान दोनों का संगम है। यह उत्कट प्रेम और निरन्तर चिन्तन का मिलन है।

इस प्रकार रामानुज के अनुसार भक्ति का अर्थ है प्रपत्ति और ध्रुवास्मृति। इस भक्ति का चरम उत्कर्ष भगवान् की विशेष कृपा से उनका साक्षात् अनुभव होने में है। यही ब्रह्मज्ञान है, ब्रह्मसाक्षात्कार है, यही मोक्ष है।

3.4 सारांश

इस खण्ड के अध्ययन से हमें यह ज्ञात होता है कि यदि चार्वाक दर्शन को छोड़ दिया जाए तो सभी भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों (चाहे वह आस्तिक हो अथवा नास्तिक हा) की मूल प्रकृति अथवा स्वभाव आध्यात्मिक है। और यह भी जाना कि सभी भारतीय दर्शन की मुख्य विशेषताओं जैसे कर्म, पुनर्जन्म, मोक्ष और अविद्या को स्वीकार करते हैं। इस दृष्टि से समस्त भारतीय दर्शनों को यदि मोक्षशास्त्र कहा जाय तो गलत नहीं होगा। चूँकि चार्वाक दर्शन भौतिकवादी और सुखवादी है इसलिए वह अध्यात्म और मोक्ष का पूर्णरूप से खण्डन करता है। भारतीय दर्शन में चार्वाक का वही स्थान है जो पाश्चात्य नीतिशास्त्र में बेन्थम के उपयोगितावाद का है। इसीलिए चार्वाक दर्शन को भारतीय सुखवाद का प्रतिनिधि माना जाता है।

हम प्रारम्भ में ही जान चुके है कि भारतीय दर्शन के सभी सम्प्रदायों के बीज उपनिषदों में विद्यमान है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि लगभग सभी दार्शनिक सम्प्रदायों की मोक्ष की अवधारणा अपने बीजरूप में उपनिषदों में विद्यमान है। उपनिषदों में मोक्ष को अमृत पद, परम पद, अभय पद, स्वाराज्य आदि कहा गया है। इसे ही ब्रह्मज्ञान, तत्वज्ञान, आत्मसाक्षात्कार अथवा अपरोक्षानुभूति भी कहा गया है। वस्तुतः मोक्ष कोई दूसरी प्राप्त होने वाली चीज नहीं अपितु वह स्वयं का ही ज्ञान है। हमें खुद का अनुसंधान करना है। जो मनुष्य साधक इस तथ्य को भलिभांति जान लेते हैं। वे कृतार्थ हो जाते हैं, तर जाते हैं, भव सागर से, संसार–चक्र से, दुःख–चक्र से परे हो जाते हैं। यह सत्यों का भी सत्य है इसी का निर्देश वेदोपनिषद् बारम्बार करते हैं।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

स्थितप्रज्ञ : गीता में स्थितप्रज्ञ की अवधारणा ही आत्मसाक्षात्कार या मोक्ष की स्थिति है। इसे ब्रह्म में निवास करने की अवस्था भी कहा जाता है, जो ब्राह्मी स्थिति कहलाती है। इस अवस्था में परमात्मा के साथ अखण्ड सम्बन्ध भी होता है। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय सभी स्थितियों में समभाव या उदासीनता का भाव धारण किये रहता है। दूसरे शब्दों में कहे तो यह स्थिति तटस्थता की होती है।

त्रिरत्न : सम्यक् दर्शन : जैन दर्शन आस्था पर बल देता है यहाँ दर्शन का अर्थ श्रद्धा या विश्वास या आस्था है। मोक्ष के उपाय का प्रथम सोपान सम्यक् श्रद्धा है। अपने अज्ञान के प्रति घृणा और सम्यक् ज्ञान के प्रति श्रद्धा को सम्यक् दर्शन कहा जाता है। **सम्यक् ज्ञान :** जैन धर्म एवं दर्शन के सिद्धांतों का ज्ञान सम्यक् ज्ञान है। इसमें जीव और अजीव के स्वरूप और उनके भेद बन्धन के कारण एवं बन्धन के निवारण के लिए आवश्यक साधनों की जानकारी हो जाती है। **सम्यक् चरित्र :** सम्यक् ज्ञान को कर्म में परिवर्तित करना सम्यक् चरित्र है। अशुभ कर्मों का त्याग और शुभ कर्मों का आचरण ही सम्यक् चरित्र है।

प्रपत्ति या शरणागति : प्रपत्ति या शरणागति ईश्वर को प्राप्त करने का सरल एवं सुनिश्चित साधन है। प्रपत्ति का द्वार सभी के लिए सदा खुला रहता है। इसमें वर्ण, जाति, लिंग आदि का कोई भेद नहीं है।

निःश्रेयस : न्याय दर्शन के अंग वैशेषिक दर्शन में मोक्ष को निःश्रेयस के रूप में वर्णित किया गया है। महर्षि कणाद के अनुसार ''यतोऽभ्युदयनिः श्रेयसं सिद्धि स धर्मः''। अर्थात् धर्म वह है जिससे मनुष्य का अभ्युदय (उन्नति) हो और जो निःश्रेयस (मोक्ष) की प्राप्ति में सहायक हो, वही धर्म है। यहाँ धर्म को जीवन की पूर्णता के लिए आवश्यक बताया गया है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार सांसारिक उन्नति और आध्यात्मिक उत्थान दोनों का महत्त्व है। इसमें व्यवहार और परमार्थ दोनों को उचित स्थान दिया गया है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार निःश्रेयस की प्राप्ति के लिए धर्म द्वारा निर्धारित कर्त्तव्य का निर्वाह अनिवार्य है।

अष्टांगयोग : योगदर्शन में मोक्ष के उपाय के रूप में स्वीकृत अष्टांगयोग में आठ अंग है। जो निम्नलिखित है– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें से प्रथम पाँच योग के बहिरंग साधन है तथा अन्तिम तीन योग के अन्तरंग साधन है।

त्रिशिक्षा : निर्वाण प्राप्ति के लिए शील, समाधि, प्रज्ञा की शिक्षा, बौद्ध दर्शन में दी गई है। इसे त्रिशिक्षा भी कहते हैं। प्रज्ञा के अन्तर्गत प्रथम दो अष्टांगिक मार्ग सम्यक् दृष्टि और सम्यक् संकल्प आते हैं। शील के अर्न्तगत सम्यक् वाक्, सम्यक कर्मान्त, सम्यक अजीव और सम्यक् व्यायाम आते हैं। समाधि में सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि आते हैं।

मुमुक्षु : मोक्षार्थी का मोक्ष प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प लेना ही मुमुक्षुत्व कहलाता है। प्रत्येक विवेकवान और जिज्ञासु व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करना चाहता है। मोक्ष प्राप्ति की इच्छा करने वाले व्यक्ति को वैदिक परम्परा में 'मुमुक्षु' कहा जाता है।

ज्ञान–कर्म–समुच्चयवाद : मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान और कर्म दोनों में सामंजस्य होना

आवश्यक है। रामानुज के समान सभी वैष्णव वेदान्त के अनुयायी मोक्ष के सन्दर्भ में ज्ञान और कर्म दोनों को समान महत्त्व देते हैं। ज्ञान और कर्म दोनों को महत्त्व देने के कारण वैष्णव वेदान्त के सभी अनुयायी ज्ञान–कर्म–समुच्चयवाद के समर्थक है। यह भक्ति मार्ग के इन आचार्यों की प्रमुख विशेषता है। यह विशेषता इसलिए भी है कि श्रीमद्भगवद्गीता भी ज्ञान–कर्म–समुच्चयवाद की स्थापना करती है जो स्वयं श्रीकृष्ण की वाणी है और कृष्ण ही इन आचार्यों के सिद्धान्तों के केन्द्र बिन्दु अथवा आराध्य है।

3.6 सन्दर्भग्रन्थ

- रंगनाथानन्द, स्वामी, (2021), *उपनिषदों का सन्देश,* भारत : अद्वैत आश्रम, नागपुर।
- शंकराचार्य, (2023), *कठोपनिषद् शांकरभाष्य,* भारतः गीताप्रेस, गोरखपुर, पुनर्मुद्रण।
- Gambhirananda, Swami, (2022), *Katha Upanishad with the Commentary of Sankaracharya*, India: Advaita Ashram, Kolkata, West Bengal.
- शंकराचार्य, (2018), *बृहदारण्यकोपनिषद् शांकरभाष्य,* भारतः गीताप्रेस, गोरखपुर, पुनर्मुद्रण।
- डॉ0 राधाकृष्णन्, (1997), *उपनिषदों का सन्देश,* भारत : राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली।
- शर्मा, चन्द्रधर, (2018), *भारतीय दर्शन : आलोचना एवं अनुशीलन,* भारत : मोतीलाल बनारसीदास प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
- मिश्र, उमेश, (2018), *भारतीय दर्शन,* भारत : उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
- पाठक, राममूर्ति, (2017), भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, भारत : अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद
- स्वामी, डॉ0 किशोरदास, (1998), भारतीय दर्शन और मुक्ति मीमांसा, भारत : स्वामी रामतीर्थ मिशन, नई दिल्ली।
- लाड, अशोक कुमार, (1987), भारतीय दर्शन में मोक्ष की अवधारणा, भारत : मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
- शुक्ल, आचार्य बद्रीनाथ, (2022), *सदानन्द कृत वेदान्तसारः,* भारत, मोतीलाल बनारसीदास प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
- अपूर्वानन्द, स्वामी, (1988), *श्रीमद्भगवद्गीता,* भारतः अद्वैत आश्रम, नागपुर।
- लोहनी, आचार्य भास्करानन्द, (1997), *गीता का तात्त्विक विवेचन,* भारतः उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
- मिश्र, सत्यकाम, (2022), *अद्वैत वेदान्त में ज्ञान एवं भक्ति : दार्शनिक विमर्श,* भारत : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- श्रीवास्तव, जे0 एस0, (2021), *अद्वैत वेदान्त की तार्किक भूमिका,* भारत : किताब महल, इलाहाबाद।
- सरस्वती, सत्यानन्द (भाषाटीकाकार), (2017) *ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य,* भारत : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

3.7 बोधप्रश्न

1. जैनदर्शन में वर्णित मोक्ष के मार्ग की व्याख्या कीजिए।
2. मोक्ष के मार्ग के रूप में आष्टांगिक मार्ग की विवेचना कीजिए।
3. गीता के मोक्षमार्ग की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।
4. योगदर्शन में कैवल्य की व्याख्या कीजिए।
5. 'ज्ञान से ही मोक्ष सम्भव है' की विवेचना कीजिए।
6. रामानुज के अनुसार मोक्ष की व्याख्या कीजिए।
7. न्यायदर्शन के अनुसार मोक्ष की विवेचना कीजिए।
8. अन्य वैष्णव वेदान्तियों के अनुसार मोक्ष को विवेचित कीजिए।
9. मोक्ष की वर्तमान उपादेयता पर संक्षित टिप्पणी लिखिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY